सावन की सतरंगी पूनम

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

श्रावण मास की पूर्णिमा उत्तर भारत में रक्षा बन्धन के उत्सव के साथ इतनी जुड़ गई है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में इसे भाई-बहिन के निश्छल प्रेम का प्रतीक त्यौहार माना जाने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश के अन्य भागों में इस पूर्णिमा को जिन समारोहों के साथ मनाया जाता है, उससे हिन्दी भाषियों की जान-पहचान बहुत कम रह गई है। वैसे शोध विद्वानों की मान्यता है कि रक्षाबन्धन का वह रूप जिसमें बहिन भाई की कलाई पर राखी बाँधती है, बहुत पुराना नहीं है। पुराणों में इसका उद्गम इन्द्र के हाथ पर इन्द्राणी द्वारा रक्षा के लिए बाँधे गये ताबीज से बताया गया है। धीरे-धीरे पुरोहित द्वारा रक्षा के लिए बाँधे गये अभिमंत्रित ताबीज, सूत्र या पोटली के रूप में रक्षा बन्धन की परम्परा चल गयी। धर्मशास्त्रों में श्रावणी पूर्णिमा को एक वस्त्र में हल्दी और पीले चावल रखकर पुरोहित द्वारा यजमान के हाथ में बाँधने का विधान मिलता है, जिसे रक्षापोटलिका कहा गया है। उत्तर भारत के लोकमानस ने इसे भाई-बहिन के स्नेह के आदान-प्रदान का त्यौहार बना कर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति कर दी। वर्ष में दो उत्सव भाई-बहिन के स्नेह को समर्पित है, भाईदोज और राखी। परम्परा यह है कि भाईदोज के दिन भाई बहिन के यहाँ जाता है, जबकि राखी के दिन बहिन भाई के यहाँ जाकर राखी बाँधती है। वैसे भी विवाहित कन्याओं के मन की यह बड़ी पुरानी साध रहती है कि बाबुल सावन में भैय्या को भेज कर उन्हें ससुराल से पीहर बुलवा लें, जहाँ वे अपनी सखियों के साथ सावन के झूले झूलें और रिमझिम की फुहारों में अपने घर के परिजनों के साथ भीगें। इसी अवसर को अनूठे स्नेह में भिगो देता है भाई के हाथ में बँधा राखी का वह डोरा, जो श्रावण की पूर्णिमा का मुख्य आकर्षण बन गया है।

श्रावणी-

मध्यकाल में किसी समय शुरू हुई इस परम्परा से पूर्व श्रावण की पूर्णिमा को वेदाध्ययन प्रारम्भ करने की परम्परा थी, जिसे श्रावणी कर्म या उपाकर्म कहा जाता है। यह परम्परा अधिक पुरानी है। वर्षा के दिनों में जब यात्राएँ सम्भव नहीं होती थीं, गुरु-शिष्य तपोवनों में बैठकर चार-साढ़े चार मास तक अध्ययन का सत्र चलाते थे। पुस्तकों और यज्ञ पात्रों को साफ करते थे। इस प्रकार संस्कृत (शुद्धि) करके वेदाध्ययन प्रारम्भ करने को उपाकर्म कहा जाता था। यह श्रावण की पूर्णिमा को शुरू होता था। आज भी उस परम्परा की याद में सनातनी पंण्डित जलाशय पर जाकर स्नान करते हैं, यज्ञोपवीत बदलते हैं और ऋषितर्पण करते हैं। ऋषियों के तर्पण का यह विधान सभी धर्मशास्त्रों में पाया जाता है और सारे देश में प्रचलित है। राजस्थान में ऋषिपूजा को लोक जीवन ने एक नया रूप दे दिया था। प्रत्येक गृहिणी अपने द्वार पर अपने अन्धे माता की सेवा कर उन्हें कावड द्वारा तीर्थ करवाने वाले आदर्श पुत्र श्रवण कुमार की पूजा करती थी। आज भी घर-घर में उसकी याद में उस ऋषि का चित्र गोबर या गेरू से लिखकर उसकी पूजा की जाती है और यह माना जाता है, कि श्रवण कुमार की पूजा करके माता-पिता के उस भक्त के प्रति हमने अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। इस दिन चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर होता है। शायद इसी प्रतीक को लेकर श्रवण की पूजा की यह परम्परा चली हो, क्योंकि ऐसी मान्यता है कि वही श्रवण कुमार श्रवण नक्षत्र बन गया था।

संस्कृत दिवस-

श्रावण की पूर्णिमा को संस्कृत दिवस मनाने की परम्परा भारत सरकार की प्रेरणा से कुछ वर्ष पूर्व ही सातवें दशक में शुरू हुई थी। इस राजकीय आदेश ने इस दिन को हमारी संस्कृति की आदि स्रोत और समस्त भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत को स्मरण करने के पावन शिष्टाचार से जोड़ दिया है। इस दिन सरकारी स्तर पर संस्कृत दिवस समारोह आयोजित किया जाता है। राजस्थान में भी कुछ विद्वानों का सरकारी सम्मान होता है। संस्कृत संस्थाएँ भी इसे अपने अपने ढंग से मनाती है। इस भाषा को समारोह से जोड़ने का यह प्रयास सारे देश में एक दिन सभी वर्गों का ध्यान इस भाषा के महत्त्व की ओर आकर्षित करने का अच्छा साधन बन गया है। लगता है श्रावणी या वेदाध्ययन की पुरानी परम्परा का आधार लेकर ही इस दिन संस्कृत दिवस मनाने की बात सोची गई होगी।

वैसे वर्षा के चार मास 'चातुर्मास्य' के रूप में जैन समाज में भी धार्मिक आयोजनों के केन्द्र रहते हैं और वैष्णव समाज में तथा साधु समाज में भी चातुर्मास्य को एक विशेष प्रकार का महत्व प्राप्त है। वर्षा के दिनों में यात्राएँ न कर एक स्थान पर बैठ कर धर्मोपदेश, स्वाध्याय और सत्संग करने की जैन परम्परा का यह परिणाम स्वाभाविक ही था कि

सावन और भादों में अनेक धार्मिक पर्व और केन्द्रित हो जाएँ। इसके फलस्वरूप जैन समाज में श्रावण पूर्णिमा को मुनियों की पूजा की जाती है और अनेक धार्मिक आयोजन होते हैं। संन्यासियों के प्रत्येक वर्ग में चातुर्मास्य करने की अर्थात् वर्षा के चार मासों में किसी एक स्थान पर रहकर धर्माचरण के अनेक कार्य करने की परम्परा अब तक चल रही है। आषाढ़ मास से कार्तिक मास तक चार मासों में चातुर्मास करने की परम्परा श्रमण संस्कृति में है, जबकि सनातन संस्कृति में **'पक्षो वै मासः'** मान कर चार पखवाड़े का चातुर्मास किया जाता है जो आषाढ़ी पूर्णिमा से शुरू होकर भाद्रपदी इस परम्परा को वैष्णव भक्ति ने एक अनूठे ढंग से ही अपनाया है। प्रत्येक वैष्णव मन्दिर में सावन के झूले सजाए जाते हैं और कृष्ण की मूर्तियों को उनमें सजाया जाता है। सावन में सारे वैष्णव मन्दिरों में फूलों की झांकियाँ,---- तथा अन्य अनेक प्रकार के शृंगार सजाये जाते हैं और दर्शनार्थी भक्तों की रेलमपेल रहती है। उत्तर भारत के अनेक स्थानों में सावन की पूर्णिमा को **'झूलन पूर्णिमा'** के रूप में मनाया जाता है। जयपुर की महिलाएँ सावन के प्रत्येक सोमवार को **'बन सोमवार'** मनाती हैं। इस दिन घर पर खाना नहीं खाया जाता। हरियाली के बीच किसी भी उपवन में एक बार सबके साथ मिल कर भोजन किया जाता है।

नारियल पूर्णिमा –

गुजरात और महाराष्ट्र में यह पूर्णिमा राखी के साथ न जुड़ कर नारियल के साथ जुड़ी हुई है। नारियल या श्रीफल वर्षों से हमारी संस्कृति का प्रतीक रहा है। इसका प्रमुख जन्मस्थान समुद्र का तट है। समुद्र की कृपा से उत्पन्न इस ताजे फल को जो इन दिनों बहुतायत से होता है, इस दिन समुद्र को चढ़ाया जाता है। सावन की पूर्णिमा के दिन समुद्र पूजन का प्राचीन विधान भी मिलता है। इसी का अनुसरण करते हुए समुद्र तट के सारे प्रदेश इसे 'नारेली पूर्णिमा' (नारियल पूनम) के रूप में मनाते हैं और समुद्र तट पर जाकर श्रीफल से उसका पूजन करते हैं। इसी ऋतु में केरल का प्रसिद्ध त्यौहार ओणम भी मनाया जाता है, जिसमें नौका दौड़ होती है और अय्यप्पन का पूजन होता है। यद्यपि केरल का ओणम पूर्णिमा के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, किन्तु नारली पूर्णिमा गुजरात और महाराष्ट्र का एक प्रमुख त्यौहार है।

हयग्रीव जयन्ती –

दक्षिण भारत में श्रावण की पूर्णिमा हयग्रीव जयन्ती के रूप में प्रसिद्ध है। विष्णु का यह अवतार उत्तर भारत में तो एक अजूबा लग सकता है, किन्तु भारत के अन्य प्रान्तों में इसकी पूजा बहुत पुरानी है। ज्ञान और वैदुष्य के देवता के रूप में घोड़े के मुँह वाले इस विष्णु के अवतार की कथा वैदिक काल से लेकर पुराण काल तक सदा लोकप्रिय रही है। भागवत में विष्णु के चौबीस अवतारों में इसे स्थान दिया गया है। कहते हैं विष्णु ने एक बार यज्ञपुरुष का रूप धारण

किया और विश्व का सारा ज्ञान और पुण्य लेकर भाग निकले। अन्य देवताओं ने यह देख कर यज्ञपुरुष का सिर कटवा दिया इस पर अश्विनीकुमारों ने एक अश्व का मुख उस पर लगा दिया। इस प्रकार हयग्रीव या हयवदन नामक विष्णु का अवतार हुआ जो विद्याओं और वैदुष्य का देवता बन गया। एक बार जब असुरों ने समस्त वेदों का अपहरण कर लिया था, इसी अवतार ने वेदों का पुनरुद्धार किया था। इस प्रकार की अनेक कथाएँ पुराणों में मिलती हैं। एक कथा यह भी है कि हयग्रीव नाम का एक असुर जिसका मुँह घोड़े का था, विश्व का संहार करने को उद्यत हो गया। उसको यह आशीर्वाद प्राप्त था कि घोड़े के मुँह वाली कोई शक्ति ही उस पर विजय प्राप्त कर सकती है। इस पर विष्णु ने हयग्रीव अवतार धारण कर उसका वध किया। जो भी हो, दक्षिण भारत में विद्वानों के द्वारा इस देवता की उपासना शताब्दियों से चली आ रही है। यह अवतार श्रावण की पूर्णिमा को हुआ था, ऐसी मान्यता है। इसलिए भारत के अनेक भागों में विष्णु के मन्दिरों में इस दिन अनेक आयोजन होते हैं।

हिमालय की गोद में –

सुदूर उत्तर में श्रावण की पूर्णिमा शिव और शक्ति के साथ जुड़ी हुई है। कश्मीर का प्रसिद्ध शिवमन्दिर अमरनाथ यात्रियों के लिए बहुत बड़ा तीर्थस्थान है जहाँ बर्फ से बने हुए स्वयं-भू शिव- लिंग के दर्शन करने बड़ी बीहड़ यात्रा पार कर यात्री लोग पहुंचते हैं। 15-16 हजार फीट की ऊँचाई पर एक दुर्गम पहाड़ी के बीच बने अमरनाथ की यात्रा पार कर यात्रा की सम्पूर्ति का दिन है श्रावणी पूर्णिमा । इस दिन वहाँ मेला लगता है और अमरनाथ की विशेष झाँकी होती है। जाड़ों के दिनों में इस तीर्थ की यात्रा सम्भव नहीं होती। हिमाचल के अनेक प्रान्तों में इस दिन वाराही देवी की मान्यता वैष्णवी देवी के समान ही पहाड़ी अंचलो में बहुत है। इस तांत्रिक देवी का उल्लेख अनेक शाक्त पुराणों में पाया जाता है।

इस सतरंगे देश की सतरंगी संस्कृति जितनी विविधरूपा है उतनी ही व्यापक भी। सावन के विविध पर्वों को इस देश के विभिन्न अंचलों ने अपनी लोकचेतना को सन्तुष्ट करने के लिए जो बहुरंगी रूप दिये हैं, वे सतरंगी संस्कृति की पूरी पहचान कराते हैं। ज्यों-ज्यों उन स्वरूपों की जानकारी हमें मिलती हैं, उनकी विविधता हमें आश्चर्यचकित कर देती है। सावन की सतरंगी पूनम के ये रंग-बिरंगे रूप अपने आप में जितने आकर्षक हैं, उतने ही वन्दनीय भी।